# 2

# भारतीय विधा के विभाग

## प्रस्तावना

भारतभूमि पर उद्‌भुत विद्याओं में जो विलुप्त हैं और जो विद्यमान हैं, वे सभी साक्षात् परम्परा से अथवा वेद से समुद्‌भुत हैं, यह भारतीय मूलदृष्टि है। वेद का कोई भी रचयिता अथवा कर्ता नहीं है। यथा फल भूमि पर गिरता है, आकाश की तरफ नहीं जाता है। यह गुरूत्वाकर्षण का नियम है। उस नियम का कोई द्रष्टा होता है, स्रष्टा नहीं। उसी प्रकार जगत के सृष्टि, प्रलय आदि विषयक अनेक प्रकार के ज्ञान ऋषियों ने प्राप्त किया। उसी ज्ञान को वेद कहते हैं। वह ज्ञान नित्य है। अतः वेद नित्य है। इस प्रकार व्यास का वचन है-

**युगान्तेऽर्हिमान् वेदान् सेतिहसान् महर्षयः।**
**लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयंभुवा॥**

यथा वृक्ष बीज से उत्पन्न होता है, उस वृक्ष से अन्य बीज उत्पन्न होता है। इस प्रकार क्रम प्रचलित है। जगत का प्रलय होता है। वह बीज रूप में स्थिति रहता है। वहाँ से उसकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार जगत् चक्रवत् चलता है। यह चक्रवाद है। जब जगत का प्रलय होता है, तब वेदों का भी अन्तर्धान होता है। जब जगत की सृष्टि होती है तब ऋषि तप द्वारा वेदों को प्राप्त करते हैं। वहाँ स्वयंभू भगवान् सृष्टिकर्ता के रूप में अनुग्रहीत होते हैं।

इस प्रकार भारतीय विद्याओं का विस्तार कैसे होता है? विद्याओं का विभाजन कैसे होता है? विद्याओं का क्या प्रयोजन है, यह समग्र विषय संस्कृत के छात्र द्वारार ज्ञेय है, अतः यह पाठ यहाँ अन्तर्भावित है। और भारतीय दर्शन इस विद्या के सागर में कहाँ हैं, यह ज्ञान भी छात्र को हो, ऐसी मनसा है।

अन्य कारण भी है कि विद्यासागर के चित्र को देखकर जिनको जो पसन्द है, वह

उसकी उपासना करता हैं। क्या सारभूत है, उसे शीघ्रता से समझता है, अतः सारहीन का त्याग करके सारभूत को ग्रहण करना चाहिए। इसीलिए सुभाषित है-

**अनन्तशास्त्रं बहु वेदितव्यं**
**स्वल्पश्च कालो बहवश्च विघ्नाः।**
**यत् सारभूतं तदुपासितव्यं**
**हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्॥**

**सरलार्थ**- शास्त्र अनन्त हैं। जो जानने योग्य है, वह भी बहुत है। परन्तु समय अल्प है। उसमें भी विघ्न प्रतिबन्धक अनेक हैं। ऐसी स्थिति में मर्त्य क्या करे? जो सारभूत है, वह उपासितव्य, अवलम्बनीय और अनुष्ठेय है। कैसे? यथा हंस नीर और क्षीर के मिश्रण से नीर छोड़कर क्षीर को विचारपूर्वक ग्रहण करता है वैसे ही करना चाहिए।

## उद्देश्य-

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- विद्याओं के तात्पर्य को जान पाने में;
- सभी विद्याओं के प्रयोजन को जान पाने में;
- विद्या के विभाजन के प्रकारों को जान पाने में;
- विद्या के विभाजन के कारणों को जान पाने में;
- अनेक विद्याओं के नाम ज्ञात कर पाने में;
- विभिन्न प्रस्थानों के प्रयोजन पर विचार कर पाने में;
- भारतीय संस्कृत वाङ्मय के प्रारूप को जान पाने में।

## 2.1 भूमिका

भारतवर्ष में आर्यों का धर्म वैदिक ही है। सभी वाङ्मय प्रपञ्च वेद से ही उद्भुत हुए, इसमें किसी की भी विमति नहीं है। वह यह आस्तिकों का वाङ्मय वृक्ष वेदमूलक कैसे है, यह जिज्ञासुओं की कौतूहलता दिखती है। कुछ विद्या साक्षात् वेद से ही समुद्भूत हुई, कोई कुछ वेद की प्रयोजन सिद्धि में ही प्रवृत हुई। कुछ वेद से सूत्र लेकर विस्तार को प्राप्त हुई। उनकी किस प्रकार से वेदोपयोगिता है, ऐसा कोई विमर्श करते हैं। यद्यपि साक्षात् यज्ञ आदि के निर्वहण में अथवा वेदार्थ के करण रूप में उसका उपयोग हो तथापि वेद के तात्पर्य (अर्थ) के प्रचार और पोषण के लिए उसकी अभिवृद्धि होती है, इसमें किसी का विरोध नहीं।

टिप्पणी

## 2.2 विद्याओं का तात्पर्य

'वेदेश्च सर्वैर्रहमेव वेद्यः' ऐसा भगवान् वासुदेव ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है। अर्थात् सभी वेद साक्षात् अथवा परम्परा से भगवान को ही प्रतिपादित करते है। जो भी वेद में उपदिष्ट है वह अन्त में जाकर भगवान् को ही बताता है, ऐसा गीता के वचन से स्पष्ट है। यथा वेद तथा अन्य वेदोद्भूत शास्त्रों का भी अर्थ सुबोध ही है। अत एव सभी शास्त्रों का साक्षात् अथवा परम्परा तात्पर्य भगवान ही है। इसीलिए शिवमहिम्न स्तोत्र में पुष्पदन्त की उक्ति है-

**त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति,**
**प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।**
**रूचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां,**
**नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसा मर्णव छव॥**

**सरलार्थ**- त्रयी (अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद) कपिल का सांख्य, पातञ्जल-योग, पाशुपत और वैष्णव तन्त्र इत्यादि विभिन्न प्रस्थान हैं। वहाँ कोई 'यह सर्वोत्तम मार्ग है, यह परम है' ऐसा रूचि के वैचित्र्य के कारण सेवन करने योग्य पथ सीधा-पथ, सरल-पथ, कुटिल-पथ अथवा टेढ़े-पथ का अवलम्बन करते हैं। वहाँ कोई आप शिव को साक्षात् प्राप्त करता है, कोई परम्परा से, यह भेद है। यथा कुछ नदियाँ साक्षात् समुद्र को जाती हैं। और कुछ टेढ़े मार्ग से बहुत घूमकर अन्य नदी के साथ मिलकर सागर को जाती हैं।

किससे क्या जानने योग्य है, किस क्रम से ज्ञातव्य है, किससे क्या प्राप्ति होने पर क्या करना चाहिए इत्यादि विवेक के लिए यहाँ उपनिषद् के वचन प्रमाण के रूप में दिए गए हैं-

**''द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत्।**
**शब्दब्रह्मणि निष्णातः वरं ब्रह्माधिगच्छति॥''**
**(मैत्रायणी उपनिषद् 6.22)**

यहाँ शब्दब्रह्म वेद ही है। जो शब्दब्रह्म को जानता है वह परम् ब्रह्म को जानता है। मोक्ष को जानकर परम पुरूषार्थ को प्राप्त करता है। अतः यहाँ भी स्पष्ट है कि शब्दब्रह्म के ज्ञान द्वारा ही परमब्रह्म का ज्ञान होता है, ऐसा अध्येतव्य है।

शब्दब्रह्म यहाँ वह ही है। और वह बहुविध है, और उससे उद्भुत शास्त्र भी अनेक प्रकार के हैं। उन प्रस्थानों को कहते हैं।

### विद्या प्रयोजन

जैसी जो विद्या होती है, वे परस्पर पोषिका होती हैं। अतः कौन सी विद्या किस प्रयोजन

टिप्पणी

को उद्देश्य से प्रवृत्त होती है, इस विषय में स्पष्टता आवश्यक है। अन्यथा विद्याओं का परस्पर विरोध है, उनमें भ्रम इत्यादि के आक्षेप सम्भव हैं, आस्तिकों पर भी। सभी विद्याएँ मानव को उद्देश्य करके प्रवर्तित होती हैं। मनुष्य सुख चाहता है। सुख सोपाधिक और निरूपाधिक दो प्रकार का होता है। सोपाधिक कर्मजन्य है। निरूपाधिक अजन्य तथा नित्य है। कोई कर्मजन्य सुख की इच्छा करते है। कोई नित्य सुख की इच्छा करते हैं। इस सुख के लाभ के लिए लौकिक और अलौकिक दो प्रकार के उपाय हैं। लौकिक उपाय प्रत्यक्ष एवं अनुमान द्वारा गम्य हैं। अलौकिक आगम द्वारा गम्य है। और आगम इन्द्रियातीत ज्ञान है जो ऋषियों द्वारा तप से प्राप्त है। कुछ भगवान् द्वारा स्वयं अवतीर्ण होकर कहे गए, गीता आदि। वह यह सकल ज्ञान प्रायः संस्कृत भाषा द्वारा निबद्ध है। संस्कृत भाषा लौकिक और वैदिक के भेद से दो प्रकार की है। आगम अर्थात् वेद भी वैदिक भाषा में निबद्ध है। महाभारत आदि तो लौकिक संस्कृत द्वारा निबद्ध है। वेद-मन्त्रों के स्वर जिस प्रकार उच्चरित होता हैं, उस प्रकार के इष्टफल प्राप्त होते हैं, अन्यथा अनिष्ट फल होता है। अत एव स्वर-ज्ञान के लिए शिक्षा शास्त्र का आविर्भाव हुआ।

संस्कृत भाषा व्याकरण-ज्ञान के बिना लघु उपाय से जानना सम्भव नहीं है। अत एव व्याकरण की आवश्यकता अनुभूत हुई। और व्याकरण का आविष्कार हुआ। और वह उपाय है तथा व्याकरण में प्रत्येक पद प्रकृति और प्रत्यय के विभाग रूप में कल्पित है। उनके योग से साधु पद व्युत्पन्न किये जाते हैं। इस प्रकार साधु पद क्या हैं, यह ज्ञान कराता है। रक्षा, ऊह, आगम, लघु, असन्देह, ये व्याकरण-अध्ययन के मुख्य प्रयोजन हैं। अन्य गौण प्रयोजन भी हैं। वे विस्तार पूर्वक महाभाष्य में व्यक्त हैं।

शिक्षा द्वारा स्वर-ज्ञान तथा व्याकरण के द्वारा साधु शब्द-ज्ञान होता है। परन्तु किस शब्द के कितने अर्थ हैं, यह ज्ञान नहीं होता। इस कारण निरूक्त नामक शास्त्र आया। उस शास्त्र में वैदिक शब्दों का अर्थविषयक ज्ञान होता है।

वेद-मन्त्रों का छन्द होता है। छन्द विभिन्न प्रकार के होते हैं। वहाँ छन्द के भेद से प्रयोक्तभेद होता है। विशिष्ट छन्द के मन्त्र विशिष्ट जन द्वारा प्रयुक्त करने योग्य है, ऐसे विधान हैं। अतएव छन्द-ज्ञान के बिना मन्त्र-प्रयोग सम्भव नहीं होता है। इसीलिए छन्द-ज्ञान के लिए छन्द-शास्त्र का अवतरण हुआ। इस प्रकार ये चार वेद शब्द राशि के ज्ञान के लिए आवश्यक है।

विशिष्ट काल में कर्म अनुष्ठान किये जाते हैं की न्यूनाधिक फल प्राप्त हो। अतः काल ज्ञान का प्रयोजन जिससे समुचित काल में कर्म का अनुष्ठान हो। इसीलिए ज्योतिष शास्त्र का उदय हुआ। यज्ञ आदि कर्मों का साक्षात् अनुष्ठान किस क्रम से करना चाहिए, कब कितने मन्त्र किस प्रकार से पढ़ने चाहिए, किस प्रकार से कौन सी क्रिया कैसे सम्पादित करनी चाहिए, यज्ञ आदि के स्थण्डिल-वेदमण्डप आदि का निर्माण कैसे करना चाहिए, ऋत्विज का आचार कैसा हो इत्यादि अनेक विषय हैं जिस विषय में स्पष्टता आवश्यक है। अत एव कल्प का आरम्भ हुआ।

टिप्पणी

इस प्रकार स्वर के ज्ञान के लिए शिक्षा है। साधु-पद के ज्ञान के लिए व्याकरण है। शब्दार्थ के ज्ञान के लिए निरूक्त है। छन्द के ज्ञान के लिए छन्द शास्त्र है। कर्म के अनुष्ठान के काल-ज्ञान हेतु ज्योतिष है। कर्म-प्रविधि के ज्ञान के लिए कल्प है, इस प्रकार वेद के छः अंग प्रसिद्ध हैं।

कर्म के प्रतिपादन के लिए वेद के प्रायः 95 प्रतिशत भाग संलग्न है। वहाँ कर्म का विषय सुकर नहीं है। उसका अंशतः समाधान वेद के ब्राह्मण भाग में होता है और कुछ कल्प सूत्रों में। परन्तु उस पर भी अधिक विवेचन अपेक्षित है। इसलिए ही पूर्वमीमांसा का उद्भव हुआ। वहाँ वेद में विद्यमान आपात-विरोध के परिहार हेतु अनेक युक्तियाँ प्रदर्शित हैं।

वेद कर्म द्वारा सोपाधिक सुख को ही प्रतिपादित करता है, सुखमय जीवनचक्र स्वर्गादि के गमन द्वारा हो, यह मीमांसकों का प्रधान प्रतिपाद्य है। परन्तु उपनिषदों में प्रतिपादित तत्व की उपेक्षा उनके द्वारा की गई है। उस वेदांश को ग्रहण कर उत्तर मीमांसा आया। यहाँ निरूपाधिक मोक्षात्मक सुख प्रधान रूप से प्रतिपादित है। अत एव कर्म-मीमांसा, ज्ञान-मीमांसा, धर्म-मीमांसा, ब्रह्म-मीमांसा, कर्मकाण्ड और ज्ञान-काण्ड, ये दो मीमांसा दिखाते हैं।

उत्तर-मीमांसा ही व्याख्यान के भेद से आज भी अद्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी, द्वैतवादी, द्वैताद्वैतवादी, शुद्धाद्वैतवादी, इस रूप में विविध सम्प्रदाय समुत्पन्न होते हैं। इनमें किसी ने केवल वेद के अन्तिम भाग उपनिषद का ही शरण लिया। किसी ने पुराण, तन्त्र आदि भी कुछ विषय अपने सम्प्रदाय में संग्रहीत किये। वेद ऋषि द्वारा प्राप्त शब्दराशि और ज्ञानराशि है। वेद के प्रतिपादित विषय दर्शनों में अच्छी प्रकार से आलोचित हैं। वहाँ वर्ण-आश्रम के भेद द्वारा अनेक प्रकार से विभक्त समाज के लिए अधिकार-भेद को अवलम्बित करके धर्म के अनुष्ठान के विधि-निषेध आदि का यथा सम्भव विस्तारपूर्वक प्रतिपादन होता है। अतः धर्मशास्त्र, स्मृतिशास्त्र प्रणीत हुए।

वेद में उक्त सिद्ध मीमांसाओं पर विचार करके स्मृतिशास्त्र में उक्त विधि द्वारा परिपालित इष्ट-फल की प्राप्ति जिसकी होती है, वह जन कृतकृत्य धन्य है। उनके समान आदर्श मानवों का जीवन-चरित्र लोगों के समक्ष उस प्रकार प्रकट करना चाहिए जिसके द्वारा लोग प्रेरित हों और जगत् की सृष्टि आदि के विषय में और भी सूक्ष्म विवेचन करना चाहिए। यह सभी पुराण करते हैं। भगवान् स्वयं अनेक बार पृथिवी पर अवतरित होते हैं। अतः उनका अवलम्बन करके पुराण प्रवर्तित होते हैं।

कुछ लोग युक्तिप्रियः होते हैं। केवल आगम में कहा गया। अतः वह उसे स्वीकार करने में समर्थ नहीं होते हैं। अतः युक्ति द्वारा प्रतिपादित गौतमीय-न्यायशास्त्र, कणाद-वैशेषिक शास्त्र और कापिल-सांख्य शास्त्र प्रवृत्त हुए।

मन का सूक्ष्म विवेचन करके विभिन्न अवस्थाओं में किसके द्वारा क्या साधन अवलम्बन करने योग्य है, ऐसा अति विस्तृत विवेचन योगशास्त्र में प्राप्त होता है। वैसी सूक्ष्मता

अन्यत्र नहीं है।

''पुरूषार्थलाभाय शरीरम् आद्यं खलु धर्मसाधनम्'', इस उक्ति द्वारा शरीर की निरोगता के लिए आयुर्वेद शास्त्र प्रवृत्त हुआ। समाज जनपदों और राष्ट्रों में विभक्त है। कुछ साधु हैं और कुछ चोर भी हैं। अत: शत्रु, चोर आदि से रक्षण के लिए धनुर्वेद का आविष्कार हुआ।

मनोरञ्जन महान विषय है। मानव सदा यन्त्र के समान नहीं हो सकता है। अत: मनोरञ्जन के गीत-वादादि नृत्य आदि द्वारा उपाय गान्धर्ववेद में कल्पित हैं।

समाज में जीविका के लिए कृषि, पशुपालन, द्रव्यविनिमय इत्यादि विषय स्वभाविक रूप से उद्भुत होते हैं। और राजा समाज के प्रतिनिधि के रूप में सेना-निर्माण द्वारा प्रजापालन करता है। अत: राज्य-पालन, ऐसा महान विषय भी आवश्यक होता है। यह सभी अथर्ववेद में संग्रहीत होता है। अथर्ववेद ही अर्थशास्त्र है।

भगवान् ने स्वयं अथवा ऋषियों ने भी मध्य-मध्य में विविध धर्ममार्गों को उपदिष्ट किया था जिसका साक्षात् उल्लेख वेद में नहीं है, अथवा वेद की ही व्याख्या रूप उपदेश होता है, और इसका वेद से विरोध भी नहीं है। उस प्रकार की अनेक विद्याएँ हैं जिसका प्रचार समाज में प्राचुर्य है। पञ्चरात्र, शैवागम इत्यादि तन्त्र, गीता इत्यादि का यहाँ अन्तर्भाव होता है।

जीवन के कृषि आदि कार्य को उपलक्ष्य करके, मनोरञ्जन आदि को उपलक्ष्य करके और विद्या प्रदान को उपलक्ष्य करके विविध विद्याएँ होती हैं। वे चौसठ (64) कलाएँ भी होती हैं।

यथा किसी एक गृह के निर्माण के लिए ईट, रेत, जल, लकड़ी, लौह, वास्तुविद्या इत्यादि बहुविध विद्याएँ और द्रव्य आवश्यक होते हैं। सभी का भवन के निर्माण में विशिष्ट अवदान हैं। वैसे ही मानव-जीवन रूपी सौध के अच्छे प्रकार से परिचालन के लिए ये विद्याएँ हैं। सभी की उपयोगिता होती है। इस प्रकार सम्पूर्ण चित्र को मन में स्थापित करके विद्याओं की उपासना करते हैं जिससे लोग दिग्भ्रान्त नहीं होते हैं। जैसे विद्याओं की उपयोगिता को जानकर उसके अर्जन में रक्षण में प्रयोग में, प्रदान में और प्रयत्न में होता है।

दो ही वैदिक धर्म हैं- प्रवृत्ति लक्षण और निवृत्ति लक्षण। जो जन्म-जन्मान्तरों में सुखमय जीवन यापन करने की इच्छा करता है, वह प्रवृत्तिमार्ग की सेवा करता है। 'अथातो धर्म जिज्ञासा' इत्यादि पथ पर चलें। और जो पुनर्जन्म आदि को ही नहीं चाहता है वह मुमुक्षु निवृत्तिमार्ग की सेवा करता है। 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इत्यादि पथ पर चलें। इस प्रकार दो मार्गों को व्यवस्थापित किया गया है। प्रवृत्तिमार्ग, धर्ममार्ग और निवृत्त मार्ग, अध्यात्म मार्ग, ऐसा व्यवहार भी होता है। जो जैसी इच्छा करता है, उसका वह मार्ग है। प्रवृत्तिमार्ग अभ्युदय का साधक है। निवृत्तिमार्ग नि:श्रेयस का साधक है। प्रदान किये

टिप्पणी

गए सभी शास्त्रों में जो अनुकूल पथ है, वह उपासित करने योग्य है। और वह विवेक दर्शन के अध्ययन द्वारा होता है।

संस्कृत के छात्रों द्वारा अवश्य ही यह विद्याप्रपञ्च सप्रयोजन बोद्धव्य है, ऐसा हमारा अभिप्राय है। यह मनोरथ इस प्रयास से अंशत: भी सफल होंगे, ऐसी हम आशा करते हैं। निवृत्तिमार्ग के प्रधान रूप से प्रतिपादन के लिए छ: आस्तिक दर्शन और छ: नास्तिक दर्शन, ऐसे द्वादश दर्शन भारतभूमि पर उत्पन्न हुए हैं। वह भारतीय दर्शन हैं। वैदिक परम्परा में नास्तिक दर्शनों का अन्तर्भाव नहीं है। परन्तु आस्तिक दर्शनों का तो वेद से ही समुद्भव है। अत: सम्पूर्ण वेद और वेदमूलक वाङ्मय में भी किस दर्शन का क्या स्थान है, इस ज्ञान के लिए इस पाठ में अट्ठारह (18) विद्यास्थान प्रस्तुत किए गए हैं।

वाङ्मय के समग्र प्रारूप को जानकर ज्ञानसम्पन्न होकर पुरूषार्थ की सिद्धि के लिए, यह भ्रान्तिरहित है।

### प्रस्थान

प्रस्थान क्या है? स्व अभीष्ट लाभ के लिए मनुष्य जिस उपाय को अवलम्बित करता है, वह उपाय ही प्रस्थान कहलाता है। स्वाभीष्ट लाभ के लिए, आत्म-समाधान के लिए अथवा आत्म साक्षात्कार के लिए, 'प्रस्थीयते अनेन इति प्रस्थानम्' यह उसकी व्युत्पत्ति है। और वह प्रस्थान कितने हैं, ऐसी जिज्ञासा सभी को होती है। इष्ट सिद्धि का उपाय प्रस्थान है। इष्ट क्या है और अनिष्ट क्या है, इस ज्ञान, उसकी प्राप्ति और परिहार, इनके उपाय शास्त्रों में सूचीबद्ध हैं। किस शास्त्र का क्या प्रतिपाद्य है, और उसका इष्ट-साधन में किस प्रकार और कितना अवदान है, ऐसा ज्ञान इस पाठ के अध्ययन द्वारा हो। वहाँ यह विषय क्रमश: उपस्थापित होंगे। इस प्रकार विद्याओं का अपर नाम प्रस्थान भी होता है। बहुत से स्थानों पर प्रस्थान शब्द योगरूढ़ है। वहाँ अत्यन्त सीमित अर्थ को द्योतित करता है। और अन्य स्थानों पर उसका व्यापकता से प्रयोग भी दिखता है।

## 2.4 विद्या

विद्या कितनी और क्या है। विद्याओं के अनेक नाम हैं। सभी का उल्लेख नहीं किया जा सकता। और जिसका उल्लेख भी किया गया है, वहाँ भी संकर अनिवार्य है। इसीलिए यहाँ एक तालिका दी गई है। वहाँ उन परम विद्याओं के विभाजन के विविध पथों को प्रदर्शित करत हैं।

1. ऋग्वेद
2. यजुर्वेद
3. सामवेद
19. सांख्य
20. योग
21. मीमांसा

4. अथर्ववेद
5. शिक्षा
6. व्याकरण
7. निरूक्त
8. छन्द (पिंगल)
9. ज्योतिष
10. कल्प
11. आयुर्वेद
12. धनुर्वेद
13. गन्धर्ववेद
14. अथर्ववेद (अर्थशास्त्र)
15. पुराण
16. धर्मशास्त्र
17. न्याय
18. वैशेषिक

22. वेदान्त
23. इतिहास
24. स्मृति
25. नीतिशास्त्र
26. कामशास्त्र
27. शिल्पशास्त्र
28. अलंकारशास्त्र
29. काव्य
30. अवसरोक्ति (शास्त्रीयसंकेत आदि)
31. यावनमत
32. बौद्धदर्शन
33. जैनदर्शन
34. चार्वाकदर्शन
35. तन्त्र
36. चतु: षष्टि कला (चौसठ)

## 2.4.1 चौसठ कलाएँ

भारतीय समाज में चौसठ कलाएँ प्रवृत्त हुई। उनका उल्लेख यहाँ किया जाता है। छात्रों के इस प्रकार से ज्ञान का कौतूहल हो कि प्राचीन भारत में इस प्रकार की कलाएँ और उनकी विद्याएँ अत्यन्त निपुणता से समाज के व्यवहार में थीं। चौसठ कलाएँ भिन्न ग्रन्थों में भिन्न नामों द्वारा कही गई है और विषय में भी भेद है। यहाँ न केवल चौसठ अपितु उससे अधिक कलाओं का उल्लेख किया गया है। अधिक विस्तार तो अन्य स्थान पर अनुसन्धेय है।

1. गीत
2. वाद्य
3. नृत्य
4. नाट्य

35. पृष्ठपद्दिकावेत्रवाणविकल्प
36. तर्क्रूकर्म (काष्ठ आदि छेदन)
37. तक्षण (काष्ठ वस्तु-निर्माण)
38. वास्तुविद्या

टिप्पणी

5. आलेख्य
6. विशेषकच्छेद्य (तिलकाकार पत्रदिच्छेदन)
7. तण्डुलकुसुमयलिविकार
8. पुष्पास्तरण
9. दशनवसनांगराग
10. मणिभूमिका कर्म (भूमिशिलाओं में मणियोजन)
11. शयनरचना
12. उदकवाद्य
13. उदकाघात
14. चित्रयोग
15. माल्यग्रथनविकल्प
16. केशेश्खरापीडयोजन
17. नेपथ्ययोग
18. कर्णपत्रभंग
19. गन्धयुक्ति
20. भूषणयोजन
21. इन्द्रजाल
22. कौचुमारयोग (बलवीर्यवर्धन औषधि)
23. हस्तलाघाव (द्रुतहस्तप्रयोग)
24. चित्रशाकापूपभक्ष्य विकारक्रिया
25. पानक-रस-रागासवयोजन
26. सूचीवापकर्म
27. वीणांडमरूकवाद्य
28. सूत्रक्रीड़ा
39. रूप्यरत्नपरीक्षा
40. धातुवाद
41. मणिरागज्ञान
42. आकरज्ञान
43. वृक्षायुर्वेद योग
44. मेषकुक्कुटलावक-युद्धविधि
45. शुकसारिकाप्रलापन
46. उत्सादन (हस्तपदआदिपीडन)
47. केशमार्जन कौशल
48. अक्षरमुष्टिकाकथन (मुष्टिसंकेत द्वारा भाषा)
49. म्लेच्छित विकल्प (सांकेतिक भाषा)
50. देशभाषा-ज्ञान
51. पुष्पशकटिका
52. निमितज्ञान
53. यन्त्रमातृका (यन्त्रनिर्माण)
54. धारणमातृका (स्मरण कला)
55. सम्पाठ्य (काव्यकण्डपाठस्पर्धा)
56. मानसी काव्यक्रिया (श्लोक में पदपूरण)
57. क्रियाविकल्प (काव्यालंकार ज्ञान)
58. छलितकयोग (रूपवाणी गोपन)
59. अभिधानकोष
60. छन्द-ज्ञान
61. वस्त्रगोपन
62. द्यूतविशेष

29. प्रहेलिका/कूटजवाणी का ज्ञान
30. प्रतिमाला (श्लोकवाचन)
31. दुर्वचकयोग
32. पुस्तकवाचन
33. नाटिकाख्यायिका दर्शन
34. काव्यसमस्यापूरण
63. आकर्षण-क्रीडा (अक्षपाश क्रीडा)
64. बालक-क्रीडनक
65. वैनयिकी और वैजयिकी विद्याओं का ज्ञान (विनय और विजय)
66. वैतालिक विद्याओं का ज्ञान
67. व्यायाम विद्या

रामायण में चौसठ कलाओं में से कुछ कलाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। जब लव-कुश ने वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण को अयोध्या में गाया तब राम ने अनेक प्रकार के विद्वानों को गीत के श्रवण एवं परीक्षण के लिए बुलाया था। उससे यह ज्ञात होता है कि ये विद्याएँ और कलाएँ रामायणकाल में भी सुप्रतिष्ठित थीं। साहित्य समाज के जीवन का दर्पण होता है। अतः इस साहित्य से उस समाज की कलाओं में विविध नैपुण्य और रूचि इत्यादि विषयों को हम जान सकते हैं। वहाँ राम ने जिनको बुलाया उनका उल्लेख यहाँ एकवचन द्वारा किया गया है-

1) महामुनि, 2) पार्थिव, 3) पण्डित (परमहंस), 4) नैगम (वेदाभिज्ञ), 5) पौराणिक, 6) शब्दविद्, 7) स्वरलक्षणज्ञ (षड्ज आदि स्वरों के), 8) लक्षणज्ञ (सामुद्रिक), 9) गन्धर्व, 10) नैगम (पौरः पुखासी), 11) पादाक्षरसमाज्ञ, 12) छन्दोज्ञ (वृत्तज्ञ), 13) कलामात्रविशेषज्ञ (कला, स्वर, उनकी मात्राएँ, एक-दो-तीन लक्षण, उनके विभागज्ञ), 14) ज्योतिषज्ञ, 15) प्रस्तारविद्, 16) क्रियाकल्पविद् (कल्प क्रियाभिज्ञत्वहेतक-विचारकुशल), 17) कार्यविशारद, 18) हेतूपचारकुशल (केवल व्यवहार काल में युक्तिप्रयोगप्रतिपादनसमर्थ), 19) हैतुक (हेतु-प्रतिपादन में निपुण नैयायिक, तार्किक), 20) छन्दोविद् (वैदिक छन्दोविद् वैदिक पाद आदि के लक्षणज्ञ), 21) पुराणज्ञ (प्राचीनवस्तुविद्), 22) चित्रज्ञ (आलेख्यकरण में समर्थ अथवा चित्रकाव्यकरण में समर्थ), 23) वृत्तज्ञ (धर्मशास्त्रमुख से सदाचारज्ञ), 24) सूत्रज्ञ (अल्पोक्त-ज्ञानसमर्थ/पद्वाक्य आदि सूत्रों के ज्ञाता, 25) गीत-नृत्य विशारद।

**तां सं शुश्राव काकुत्स्थः पूर्वाचार्यविनिर्मिताम्।**
**अपूर्वां पाठ्यजातिं च गेयेन समलंकृताम्॥ 7.94.2॥**

**प्रमाणैर्बहुभिबद्धां तन्त्रीलयसमन्विताम्।**
**बालाभ्यां राघवः श्रुत्वा कौतूहलपरोऽभवत्॥ 7.94.3॥**

**अथ कर्मान्तरे राजा समाहूय महामुनीन्।**
**पार्थिवांश्च नरव्याघ्रः पण्डितान्नैगमांस्तथा॥ 7.94.4॥**

**पौराणिकाञ्छब्दविदो ये च वृद्धा द्विजातयः।**
**स्वराणां लक्षणज्ञांश्च उत्सुकान् द्विजसत्तमान्॥ 7.94.5॥**

टिप्पणी

लक्षणज्ञांश्च गान्धर्वान्नैगमांश्च विशेषतः।
पादाक्षरसमासज्ञांश्छन्दः सु परिनिष्ठितान्॥ 7.94.6॥

कलामात्रविशेषज्ञाञ्ज्योतिषे च परं गतान्।
क्रियाकल्पविदश्चैव तथा कार्यविदो जनान्॥ 7.94.7॥

भाषाज्ञानिंगितज्ञांश्च नैगमाश्चाप्यशेषतः।
हेतूपचारकुशलान् वचने चापि हैतुकान्॥ 7.94.8॥

छन्दोविदः पुराणज्ञान् वैदिकान् द्विजसत्तमान्।
चित्रज्ञान् वृत्तसूत्रज्ञान् गीतनृत्यविशारदान्॥ 7.94.9॥

शास्त्रज्ञान् नीतिनिपुणान् वेदान्तार्थप्रबोधकान्।
एतान् सर्वान् समानीय गातारौ समवेशयत्॥ 7.94.10॥

## पाठगत प्रश्न 2.1

1. भारतीय परम्परा में ऋषि वेद के कर्ता हैं अथवा दृष्टा?
2. ऋषियों ने वेदों को कैसे प्राप्त किया?
3. आर्यों के धर्म का क्या मूल है?
4. प्रस्थान पद का क्या अर्थ है?
5. कलाएँ कितनी हैं?
6. वैदिक धर्म कितने प्रकार के हैं, भेदों को लिखें।
7. अभ्युदय किस मार्ग से होता है?

## 2.5 विद्याविभाजन

विद्याओं के विभाग के अनेक प्रकार हैं। शिवमहिमन्स्तोत्र के व्याख्यान में मधुसूदन सरस्वती महोदय द्वारा प्रस्थान भेद प्रदर्शित किये गए हैं और यह प्रकार वस्तुतः पुराणसम्मत एवं उससे गृहीत है। वहाँ वह अट्ठारह विद्याएँ प्रदर्शित करते हैं और उनका विभाजन करते हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी चाणक्य स्वयं पूर्व आचार्यों के मतों को उद्धृत करते हैं। और स्वयं के अभिप्राय प्रकट करते हैं। इन आचार्यों में विद्या-विभाजन के विभिन्न प्रकार दिखते हैं। अतएव यथास्थान पर उल्लिखित करके विभाजन को प्रदर्शित किया जाएगा। वहाँ किस क्रम से उनमें किन विद्याओं का संक्षिप्त परिचय दिया जाएगा। सभी विद्याओं का परिचय दुष्कर है और परिचय में प्रधान रूप से विद्या का आरम्भ, आचार्य, ग्रन्थ, विभाग, विषय, प्रयोजन, इस प्रकार के बिन्दुओं की यथासम्भव आलोचना की जाएगी।

## 2.6 विद्या के विभाजन का प्रकार

### विद्या के स्थान

विद्या के स्थान अट्ठारह सुप्रसिद्ध ही है। वे वेदमूलक हैं। कहीं चौदह विद्यास्थान भी उल्लिखित हैं।

मधुसूदन सरस्वती के मत में विद्या का विभाग (वायुपुराण से अनुगृहीत)

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इस प्रकार वेद चार हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द, ज्योतिष, इस प्रकार वेदांग ः है। पुराण-न्याय- मीमांसा-धर्मशास्त्र, ये चार उप-अंग हैं। यहाँ उपपुराणों का अन्तर्भाव पुराण में हो गया है। वैशेषिक शास्त्र का न्याय में। वेदान्त शास्त्र का मीमांसा में। महाभारत और रामायण, सांख्य, पातञ्जल, पाशुपत, वैष्णव आदि का धर्मशास्त्र में। मिलकर चौदह विद्याएँ हैं। ये भी चार उपवेदों के साथ अट्ठारह विद्या होती हैं। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, अर्थशास्त्र, ये चार उपवेद हैं। सभी आस्तिकों के इस प्रकार के ही शास्त्र प्रस्थान हैं। अन्य एकदेशियों का भी इनमें ही अन्तर्भाव हो गया। वस्तुतः अट्ठारह विद्या-स्थान, ये मधुसूदन सरस्वती का नवीन मत नहीं है। तथा विद्यास्थानों का आयोजन पूर्णतः ही है। पुराण आदि में इस प्रकार सुना जाता है। यहाँ मधुसूदन सरस्वती का वैशिष्टय है कि उन-उन विद्या-स्थानों पर क्या-क्या अन्तर्भाव होता है, इस विषय में इस प्रकार ही निर्णय किया गया है।

इस प्रकार के विभाजन में अत्र पुराण प्रमाण है। यद्यपि सभी पुराण सम्मत है ऐसा नहीं है तथापि अनेक प्रकार से समानता (साम्यता) परिलक्षित होती है। इसलिए श्लोक हैं-

**अंगानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।**
**पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥**

**आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेत्यनुक्रमात्।**
**अर्थशास्त्रं परं तस्माद् विद्यास्वष्टादश स्मृताः॥**

**अष्टादशानामेतासां विद्यानां भिन्नवर्त्मनाम्।**
**आदिकर्ता कविः साक्षाच्छलपाणिरिति श्रुतिः॥**

**स हि सर्वजगन्ननाथः सिसृक्षुरखिलं जगत्।**
**ब्राह्मणं विदथे साक्षात् पुत्रमग्रे सनातनम्॥**

**तस्मै प्रथमपुत्रय ब्रह्मणे विश्वयोनये।**
**विद्यश्चेमा दर्दा पूर्व विश्वस्थित्यर्थमीश्वरः॥ (वायुपुराणम्)**

टिप्पणी

आदिकर्ता ईश्वर, शूलपाणि, सर्वजगन्नाथ इस जगत की सृष्टि की इच्छा करके सर्वप्रथम ब्राह्मण की सृष्टि की। उन ब्रह्म-देव के लिए ये अट्ठारह विद्याएँ दी। ये विद्याएँ विश्व की स्थिति के लिए हैं।

**याज्ञवल्क्य की भी सम्मति-**

याज्ञवल्क्य के द्वारा विद्या के विषय में उक्त है-

पुराण-न्याय-मीमांसा-धर्मशास्त्रांगमिश्रिता।

वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।। (1/3)

**वेद चार हैं** -1) ऋग्वेद 2) यजुर्वेद 3) सामवेद 4) अथर्ववेद

वेदांग छः है - 1) शिक्षा 2) व्याकरण 3) निरूक्त 4) छन्द
5) ज्योतिष 6) कल्प

**उपांग चार हैं** - 1) पुराण 2) न्याय 3) मीमांसा 4) धर्मशास्त्र

उपवेद चार हैं - 1) आयुर्वेद 2) धनुर्वेद 3) गन्धर्ववेद 4) अर्थवेद (अर्थशास्त्र)

यहाँ लिखित विद्याओं के उपविभाग भी हैं। और वे विभाग उन विद्याओं के प्रतिपादनकाल में संक्षेप रूप में दिखते हैं।

## 2.7 विद्या के विभाजन का प्रकार

### कौटिल्य के मतानुसार विद्याविभाग

जिसमें धर्म, अर्थ आदि का करणत्व हो वह विद्या है, ऐसा चाणक्य सम्मत विद्या का लक्षण है। वह लक्षण इन विद्याओं में है। आन्वीक्षिकी त्रयी, वार्ता और दण्डनीति, यह चार विद्याएँ ही कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में कहीं। सांख्य, योग और लोकायत, आन्वीक्षिकी है। एक्, यजु और साम त्रयी है। कृषि, पशु-पालन और वाणिज्य वार्ता है। दण्डनीति तो राजनीति है। अर्थवत्व का हेतुओं द्वारा परीक्षण अन्वीक्षा है, इसका प्रयोजन आन्वीक्षिकी है। सांख्य कपिल मुनि द्वारा उक्त प्रकृति-पुरूष विवेचक शास्त्र है। योग महेश्वर द्वारा उक्त प्रत्याहार, ध्यान, धारणा आदि का प्रतिपादक है। लोकायत ब्रह्मगार्ग्य द्वारा उक्त न्याय-शास्त्र है। यह तीन आन्वीक्षिकी है। अथर्ववेद इतिहासवेद (महाभारत आदि रूप) है। अथर्ववेद अभिचारकर्म-ज्ञान आदि फल का प्रतिपादक है। अतः वह भिन्न प्रस्थान में ही गणित होता है, त्रयी में उसका स्थान नहीं है। कर्ता के कार्य का साधन त्र्याख्य समुदाय है। इसीलिए देवीपुराण में-

**ऋग्यजुः सामभेदेन सांगवेदगतापि वा।**
**त्रयीति पठय्ते लोके दृष्टादृष्टार्थसाधिनी।।**

टिप्पणी

वेदत्रयी में आए हुए तीन मन्त्र ही त्रयी शब्द के तात्पर्यार्थ हैं। वे ही मन्त्र ऋग्मंत्र, यजुर्मन्त्र और साममन्त्र यथाक्रम से पद्यात्मक, गद्यात्मक और गेयात्मक हैं।

वेद के अंग छः हैं और वे हैं- शिक्षा वर्णोच्चारण का उपदेशक शास्त्र है। कल्प क्रत्वनुष्ठान के उपदेश रूप आश्वलायन आदि प्रणीत सूत्र है। व्याकरण शब्दानुशासन, पाणिनीय आदि है। निरूक्त यास्क द्वारा रचित निर्वचन शास्त्र है। छन्दः शास्त्र पिंगल आदि प्रणीत है। ज्योतिष सूर्य आदि की गति आदि का प्रतिपादक शास्त्र है।

### विद्या प्रचार और संक्षेप

वे विद्यास्थान मरीचि ब्रह्मण मुख से इस लोक में प्रवर्तित आदि हुए जिसे युग में अल्प आयु, अल्प बुद्धित्व आदि दोष के कारण मनुष्यों द्वारा सम्पूर्ण रूप से धारण करने में समर्थ नहीं हुआ गया, ऐसा परमेश्वर ने स्वयं व्यास के रूप में होकर कहा। जैसे द्वितीय स्कन्द में कहा गया है-

**कालेन मीलितदृशामवमृश्य नृणां**
**स्तोकायुषां स्वनिगमो बत दूरपारः।**

**आविर्हितस्त्वनुयुगं स हि सत्यवत्यां**
**वेदद्रुमं विटपशो विभजिष्यति स्म॥**

वेद के ऋक्, यजु और साम भेद वेद में भी उल्लिखित हैं। इस प्रकार नामकरण व्यास देव द्वारा नहीं किया गया परन्तु यह सभी मिश्रित रूप में था। लक्षण के अनुसार पृथक् यह सभी मिश्रित रूप में था। लक्षण के अनुसार पृथक् करके शाखाओं में विभाजन करने योग्य विभिन्न ब्राह्मण कुलों को रक्षा के लिए दिया। यथा पैल, वैशम्पायन, जैमिनि, सुमन्तु, ये चार व्यास के शिष्य हैं। उनमें पैल के लिए ऋग्वेद, वैशम्पायन को यजुर्वेद, जैमिनि को सामवेद और सुमन्तु को अथर्ववेद समर्पित है।

## 2.8 विद्या के विभाजन का प्रकार

मुण्डकोपनिषद् में विद्या विभाजन के कुछ प्रकार दिखते हैं। इसीलिए मुण्डकोपनिषद में मन्त्र विहित है-

"तस्मै स होवाच। द्वे विद्ये वेदितव्ये इति स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च॥ 1.4॥

तत्रपरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरूक्तं छन्दो ज्योतिषमति।

अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते"॥ 1.5॥

**सरलार्थ**- सभी विद्याएँ परा और अपरा है, ऐसा ब्रह्म को जानने वाले, वेदार्थ के ज्ञाता

टिप्पणी

एवं परमार्थदर्शी कहते हैं। परा का अर्थ है श्रेष्ठा, उत्कृष्टा, प्रशष्टा और प्रशस्ता। अत्यन्त श्रेष्ठ मंगलकारिणी विद्या का ही परा विद्या नामधेय है। इस प्रकार की परा विद्या क्या है? जिसके द्वारा वह अक्षर (ब्रह्म) जाना जाता है, वह परा विद्या कही जाती है। जिस विद्या से 'अक्षर' का स्वरूप जाना जाता है, प्राप्त होता है वह ही परा विद्या है। अक्षर नाम (जो नष्ट नहीं होता) नाशरहित ब्रह्म का है। जन्म से रहित होने के कारण, नाशरहित, देशकालातीत परं ब्रह्म 'अक्षर' कहलाता है। समस्त विश्व के जन्म, स्थिति, लय का कारण तत्व अक्षर है। जो विद्या इस अक्षर (ब्रह्म) को प्रतिपादित करती है, वह ही परा विद्या है। अतः ब्रह्मविद्या ही एक परा विद्या होती है। सभी प्राणियों के आत्मभूत निर्गुण सभी प्रमाणों से अगोचर जगदास्पदभूत अक्षर (ब्रह्म) को परा विद्या द्वारा ही जाना जाता है, अन्यथा नहीं।

वहाँ अपरा विद्या ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द और ज्योतिष ही है।

यहाँ यद्यपि उपनिषद् ही ब्रह्म विद्या, परा विद्या है तथापि उपनिषद् शब्दराशि रूप होने से वह अपरा विद्या है। शब्दराशि द्वारा प्रतिपाद्य विज्ञान, जिसके ज्ञान से अधिकारी 'अक्षर' को जान लेता है, वह विज्ञान परा विद्या है, ऐसा विवेक है। अपरा विद्या अविद्या भी कही जाती है। अर्थात् जिसके द्वारा धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि होती है, वह अपरा विद्या है। जिससे मोक्ष की सिद्धि होती है, वह परा विद्या है, ऐसा तात्पर्य है। वहाँ भी धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि के लिए यद्यपि आधुनिक, भौतिक आदि विज्ञान का उपयोग होता है तथापि उसका अन्तर्भाव अपरा विद्या में होता है। कहाँ से? कारण यह है कि प्रत्यक्ष अथवा अनुमान द्वारा उसकी उपलब्धि होती है। जो वेदों द्वारा गम्य पुरूषार्थ का उपाय है, वह ही विद्या में अन्तर्निहित है। अत एव नास्तिक मत यहाँ नहीं दिए गए हैं।

## 2.9 विद्या के विभाजन का प्रकार

समग्र वाङ्मय का विभाजन करते है, इस प्रकार के भेद दुर्लभ हैं। कुछ ऊपर ही प्रदर्शित है। यहाँ दर्शन के विभाजन के कुछ प्रकार हैं। यहाँ कुछ प्रस्तुत किये गए है।

### 2.9.1 दर्शन के विभाजन का प्रकार

दर्शन दो प्रकार का है- आस्तिक और नास्तिक। उसमें छः आस्तिक दर्शन, छः नास्तिक दर्शन, ऐसे बारह दर्शन कहे गए हैं।

आस्तिक दर्शन, जैसे- न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा।

नास्तिक दर्शन, जैसे- चार्वाक, जैन, बौद्ध, ये तीन है।

उसमें बौद्धों के चार भेद है- माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक एवं वैभाषिक।

## 2.9.2 दर्शन के विभाजन का प्रकार

सर्वदर्शनसंग्रह नामक सायणमाधव द्वारा प्रणीत ग्रन्थ है। उसके उपोद्घात में वासुदेवशास्त्री अभ्यंकर ने दर्शन का भिन्न प्रकार से विभाग प्रदर्शित किया है। इसमें केवल कुछ विद्वानों के मत प्रदर्शित हैं। उनके द्वारा किसी दर्शन की निन्दा अभिप्रेत नहीं है। अभ्यंकर महोदय के मत में दार्शनिक दो प्रकार के होते हैं- श्रोता और तार्किक। उसमें श्रोता दर्शनकार मीमांसासूत्रकार जैमिनि, व्याकरण सूत्रकार पाणिनि और ब्रह्मसूत्रकार बादरायण, ये तीन प्रकार हैं। और तार्किक आस्तिक तार्किक और नास्तिक तार्किक, इस भेद से दो प्रकार हैं। उसमें आस्तिक तार्किक जैसे - विशिष्टाद्वैती रामानुज, सांख्यसूत्रप्रणेता कपिल, योगसूत्र प्रणेता पतञ्जलि, न्याय सूत्रकार गौतम और वैशेषिक सूत्रकार कणाद, ये पाँच हैं। नास्तिक तार्किक जैसे- लोकायत, आर्हत, सौगत, कापालिक आदि शास्त्र हैं।

जो वेद के अपौरूषेयत्व को स्वीकार करते हैं, वे श्रोता हैं। जो वेद के पौरूषेयत्व को अंगीकृत करते हैं, वे आस्तिक तार्किक हैं। जो वेद के प्रामाण्य को ही स्वीकार नहीं करते है, वे नास्तिक तार्किक हैं। जिनके मत में प्रमाणों में श्रुति सर्वप्रबल होती है, वे श्रोता हैं। जिनके मत में प्रमाणों में अनुमान प्रबल है और श्रुति गौण है, वे आस्तिक तार्किक हैं। जिनके मत में श्रुति प्रमाण ही नहीं है। अनुमान ही प्रमाण है, वे नास्तिक तार्किक हैं। चार्वाक तो अनुमान को भी नहीं मानते हैं। केवल प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है, ऐसा मानते हैं। अतः वस्तुतः उनका तो दार्शनिकत्व भी सिद्ध नहीं होता है। सर्वथा उपेक्षा होती है। 'निर्युक्तिकं ब्रुवाणस्तु नास्माभिर्विनिवार्यते', इस प्रकार न्याय द्वारा स्वयं स्वसिद्धान्त के विरूद्ध आचरण करके अनुमान का अवलम्बन किया जाता है और वे स्वयं खण्डित होता है, खण्डनीय कहाँ से? क्षेत्र में बीजवपन करते हैं। फल प्राप्ति के लिए। अनुमान के बिना इस कार्य में प्रवृत्ति सम्भव नहीं होती है। यथा कोई एक (जीव) जल में निमग्न होने से मर गया। द्वितीय भी जल में निमग्न होकर मर जाएगा, ऐसा मानकर वह अनुमान को स्वीकार करता है। अन्यथा स्वयं जल में निर्भय होकर निमग्न होता। लेकिन ऐसा नहीं करता है। जिनके मत में वेद अनायास, अबुद्धि द्वारा अग्रसर ईश्वर से आया, वे श्रोता हैं। जिनके मत में वेद अनायास बुद्धि द्वारा अग्रसर ईश्वर से आया, वे तार्किक आस्तिक हैं। श्रोता वेद के साक्षात् व्याख्यान में प्रवर्तित होते हैं अथवा वेद-व्याख्यान के लिए उपयोगी शास्त्र की रचना करते हैं। यथा-जैमिनीय, बादरायणीय।

## 2.9.3 नास्तिक प्रस्थान

नास्तिक प्रस्थान के अनन्तर हैं, उनका इनमें अन्तर्भाव से पृथक् गणना करना उचित है। जैसे- माध्यमिकों का शून्यवाद एक प्रस्थान है। क्षणिक-विज्ञान-मात्र-वाद से अन्य योगाचारों का है। ज्ञानाकार अनुमेय-क्षणिक-बाह्यार्थवाद से अपर वैभाषिकों का है। एवं

टिप्पणी

सौगतों के प्रस्थान-चतुष्टय है। सौगत (सुगत-बुद्ध) गौतम बुद्ध के अनुयायी हैं।

तथा चार्वाकों का एक प्रस्थान देहात्मवाद है। एवं दिगम्बरों का द्वितीय प्रस्थान देहातिरिक्त देहपरिणाम आत्मवाद है। एवम् मिलकर नास्तिकों के छः प्रस्थान हैं।

## 2.9.4 नास्तिकों का विद्याओं में अर्न्तभाव

वे नास्तिक अट्ठारह विद्याओं में किससे ग्रहण नहीं होते हैं। वेद बाह्यत्व के कारण उनका म्लेच्छ आदि प्रस्थानवत् परम्परा से भी पुरूषार्थ में अनुपयोगी होने के कारण उपेक्षणीय ही है। और यहाँ साक्षात् अथवा परम्परा द्वारा पुमर्थोपयोगियों का वेद के उपकरणों के प्रस्थानों का विद्याओं में अन्तर्भाव नहीं होता है। इसलिए परम्परा है-

**योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्रश्रयाद् द्विजः।**
**स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः॥ मनुस्मृति 2.11॥**

**सरलार्थ** - हेतु शास्त्र तर्कशास्त्र का अवलम्बन करके जो द्विज संस्कृत होने पर भी (संस्कार से द्विज कहलाते हैं) वेद (श्रुति) का और धर्मशास्त्र (स्मृति) को अवमान करे, वह साधुओं द्वारा बहिष्कृत करने योग्य है। और वह वेदनिन्दक नास्तिक है। इस प्रकार जो वेदमूलक शास्त्रों का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करता, वह नास्तिक है, ऐसी प्रसिद्धि है। इससे यह सिद्ध है कि जिसका जन्म वैदिकों के कुल में हुआ है, वह भी यदि वेद का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करता तो वह बहिष्कार करने योग्य है। अतः केवल बौद्ध और जैन नास्तिक हैं, ऐसा नहीं है। जो कोई भी वेद का प्रामाण्य नहीं मानता, वह नास्तिक है।

सुगत गौतम बुद्ध हैं। उनसे आये हुए सौगत प्रस्थान हैं।

बृहस्पति, गौतम बुद्ध, जिन, ये तीन जो शास्त्र प्रवृत्त हुए, वे वेद का प्रामाण्य नहीं स्वीकार करते हैं। अतः वे नास्तिक हैं। बृहस्पति का चार्वाक मत एक प्रस्थान है। जिन से उद्भुत जैन दर्शन अन्य प्रस्थान है। यद्यपि उनमें दिगम्बर और श्वेताम्बर के भेद से दो सम्प्रदाय हैं। तथापि एक ही प्रस्थान स्वीकृत है। बुद्ध से प्रसृत माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक के भेद से चार बौद्ध प्रस्थान हैं।

वे नास्तिक दर्शन हैं- 1) चार्वाक दर्शन 2) जैन दर्शन 3) माध्यमिक दर्शन 4) योगाचार दर्शन 5) सौत्रन्तिक दर्शन 6) वैभाषिक दर्शन, इस प्रकार छः नास्तिक दर्शन होते हैं।

इस संसार में नर पुरूषार्थ के बिना कुछ भी नहीं चाहता है। जो पुरूषार्थ के लिए उपयोगी है, वह ही आर्यों के अट्ठारह प्रस्थानों में अन्र्भावित होता है। नास्तिक प्रस्थान पुरूषार्थ के लिए उपयोगी नहीं हैं। अतः उनका आस्तिक प्रस्थानों में अन्तर्भाव नहीं करते हैं।

## पाठागत प्रश्न 2.2

1. विद्या-स्थान कितने हैं?
2. कौटिल्य के मतानुसार मुख्य विद्या-विभाग क्या है?
3. मुण्डकोपनिषद् में विद्या-विभाग किस प्रकार है?
4. त्रयी में क्या नहीं है?

   (क) ऋग्वेद (ख) यजुर्वेद (ग) सामवेद (घ) अथर्ववेद

5. यह वेदांग है।

   (क) कल्प (ख) न्याय (ग) आयुर्वेद (घ) ब्राह्मण

6. यह उपांग है।

   (क) पुराण (ख) अर्थशास्त्र (ग) व्याकरण (घ) उपनिषद्

7. यह उपवेद है।

   (क) पुराण (ख) अर्थशास्त्र (ग) व्याकरण (घ) उपनिषद्

8. यह वेद है।

   (क) पुराण (ख) अर्थशास्त्र (ग) व्याकरण (घ) ब्राह्मण

9. आन्वीक्षिकी में यह शास्त्र नहीं है।

   (क) योग (ख) सांख्य (ग) लोकायत (घ) मीमांसा

10. वार्ता में यह नहीं है।

    (क) कृषि (ख) पशु-पालन (ग) वाणिज्य (घ) राजनीति

11. यह आस्तिक दर्शन है।

    (क) माध्यमिक (ख) वैभाषिक (ग) दिगम्बर (घ) वैशेषिक

12. यह दर्शन वेद का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करता।

    (क) योग (ख) सांख्य (ग) वैभाषिक (घ) मीमांसा

13. योग किस प्रकार का दर्शन है।

    (क) श्रौत (ख) तार्किक (ग) नास्तिक (घ) निरीश्वर

टिप्पणी

14. ये श्रौत नहीं है।

(क) पाणिनीय (ख) जैमिनीय (ग) बादरायणीय (घ) सौगत

15. नास्तिकों का विद्याओं में अन्तर्भाव नहीं होता। उसमें क्या कारण है।

(क) पुरूषार्थ के लिए अनुपयोगिता (ख) ईश्वर का निरस्कार

(ग) जीव का तिरस्कार (घ) उपमान का तिरस्कार

16. यह सौगत दर्शन नहीं है।

(क) माध्यमिक (ख) वैभाषिक (ग) सौन्त्रान्तिक (घ) वैशेषिक

17. यह पुरूषार्थ नहीं है।

(क) काम (ख) धर्म (ग) मोक्ष (घ) इच्छा

## पाठसार

इस पाठ में विद्याओं का परिचय, इस लक्ष्य को आंशिक रूप से साधा गया है। सकल विद्याओं का भगवान् (ईश्वर) में ही तात्पर्य है, ऐसा प्रमाण के साथ सिद्ध है। विविध विद्याओं का उल्लेख में आगे प्रतिपादित है कि विद्या प्रवृत्ति और निवृत्ति के मार्गो के साधन का विविष्ट प्रयोजन को प्रस्तुत करके उद्भुत हुई। विविध प्रयोजन हैं, अलौकिक उपाय द्वारा वे विद्याएँ कैसे साधी जाती है, यह महान् विषय संक्षिप्त रूप से प्रकट किया गया है।

और वहाँ पर बहुत सी विद्याओं के नाम उल्लिखित हैं। किन्तु उन विद्याओं का भी उपविभाग विपुल ग्रन्थों में है, ऐसा विस्मृतव्य नहीं है। चौसठ (64) कलाएँ हैं। और वे रामायण काल में भी प्रसिद्ध थी, ऐसा रामायण में प्रमाण दिया गया है।

विद्याओं के प्राचुर्य होने के कारण उनका विभाजन भी क्लिष्ट ही है। अतः विभाजन के श्रुति, स्मृति, कवि सम्मत अनेक प्रकार हैं। उनमें पुराणानुगृहीत अट्ठारह विद्यास्थान है, ऐसा विभाग सर्वमान्य एवं मुख्य हैं। उसका ही अनुवाद मधुसूदन सरस्वती द्वारा किया गया है। आचार्य चाणक्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' नामक ग्रन्थ में विद्या के विभाजन का अपरम उपाय प्रदर्शित किया। उन्होंने कहा कि आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति चार ही विद्याएँ हैं। और उनका विस्तार यथास्थान पर उपलब्ध है।

मुण्डकोपनिषद में विभाजन के अपर प्रकार परिलक्षित होते हैं। और वह विभाग प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग को अभिलक्षित करके सम्यक् रूप से प्रस्तुत हैं।

और वहाँ पर दर्शन के विभाग के अनेक प्रकार प्रदर्शित हैं। आस्तिक और नास्तिक के भेद से विभाग हैं। वासुदेव शास्त्री अभ्यंकर ने अपर प्रकार को प्रदर्शित किया।

और वहाँ पर नास्तिक दर्शन का अट्ठारह विद्याओं में अन्तर्भाव कहाँ से नहीं होता, ऐसे विषय पर आलोचना की गई है।

## पाठान्त प्रश्न

1. क्या उपासितव्य है?
2. ऋषियों ने वेदों को कैसे प्राप्त किया?
3. विद्याओं का तात्पर्य बताएँ।
4. विद्या के प्रयोजन आविष्कृत करें।
5. वैदिक धर्म के विभाग का परिचय दें।
6. वायुपुराण से अनुगृहीत विद्या के विभाजन लिखिए।
7. चाणक्य के अनुसार विद्या का विभाजन लिखिए।
8. मुण्डकोपनिषद में उक्त प्रकार द्वारा विद्या का विभाजन कीजिए।
9. आस्तिक-नास्तिक भेद से दर्शनों का विभाजन कीजिए।
10. वासुदेव शास्त्री के मत के अनुसार दर्शनों को विभाजित कीजिए।
11. नास्तिकों का विद्याओं में अन्तर्भाव क्यों नहीं होता?

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

**उत्तर - 2.1**

1. दुष्टार:
2. युगान्त में अन्तर्हित इतिहास सहित वेदों को स्वयंभू द्वारा अनुज्ञात करके महर्षियों ने तप से प्राप्त किया।
3. वेद
4. स्वाभीष्ट लाभ के लिए, आत्मसमाधान के लिए अथवा आत्मसाक्षात्कार के लिए जिसके द्वारा ले जाया जाता है, वह प्रस्थान है।
5. 64
6. दो प्रकार के ही वैदिक धर्म हैं- प्रवृत्ति लक्षण और निवृत्ति लक्षण।
7. प्रवृत्ति मार्ग से

टिप्पणी

**उत्तर-2.2**

(1) अट्ठारह (18)

(2) कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति, ये चार ही विद्याएँ कहीं।

(3) परा, अपरा के भेद से विद्या दो प्रकार की है। परा वह जिसके द्वारा अक्षर ब्रह्म जाना जाता है। अन्य सभी अपरा विद्या हैं। और वेद हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द, ज्योतिष।

(4) (घ)

(5) (क)

(6) (क)

(7) (ख)

(8) (घ)

(9) (घ)

(10) (घ)

(11) (घ)

(12) (ग)

(13) (ख)

(14) (घ)

(15) (क)

(16) (घ)

(17) (घ)

**।।द्वितीय पाठ समाप्त।।**